हिन्दी के योद्धा : राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन

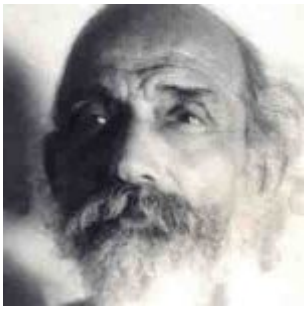

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के अग्रणी पंक्ति के नेता राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन (1.8.1882-1.7.1962) का राजनीति में प्रवेश हिन्दी प्रेम के कारण ही हुआ. 17 फ़रवरी 1951 को मुजफ्फरनगर 'सुहृद संघ' के 17 वें वार्षिकोत्सव के अवसर पर टण्डन जी ने कहा था- "हिन्दी के पक्ष को सबल करने के उद्देश्य से ही मैंने कांग्रेस जैसी संस्था में प्रवेश किया, क्योंकि मेरे हृदय पर हिन्दी का ही प्रभाव सबसे अधिक था और मैंने उसे ही अपने जीवन का सबसे महान व्रत
बनाया……. हिन्दी साहित्य के प्रति मेरे (उसी) प्रेम ने उसके स्वार्थों की रक्षा और उसके विकास के पथ को स्पष्ट करने के लिए मुझे राजनीति में सम्मिलित होने को बाध्य किया."

राजर्षि में बाल्यकाल से ही हिन्दी के प्रति अनुराग था. इस प्रेम को बालकृष्ण भट्ट और मदन मोहन मालवीय जी ने प्रौढ़ता प्रदान करने की. 10 अक्टूवर 1910 को काशी में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन महामना मालवीय जी की अध्यक्षता में हुआ और टण्डन जी सम्मेलन के मंत्री नियुक्त हुए. तदनन्तर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के माध्यम से हिन्दी की अत्यधिक सेवा की. टण्डन जी ने हिन्दी के प्रचार- प्रसार के लिए हिन्दी विद्यापीठ प्रयाग की स्थापना की. इस पीठ की स्थापना का उद्देश्य हिन्दी शिक्षा का प्रसार और अंग्रेजी के वर्चस्व को समाप्त करना था. सम्मेलन हिन्दी की अनेक परीक्षाएँ सम्पन्न करता था. इन परीक्षाओं से दक्षिण में भी हिन्दी का प्रचार प्रसार हुआ. सम्मेलन के इस कार्य का प्रभाव महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में भी पड़ा, अनेक महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में हिन्दी के पाठ्यक्रम को मान्यता मिली. वे जानते थे कि सम्पूर्ण भारत में हिन्दी के प्रसार के लिए अहिन्दी भाषियों का सहयोग अपेक्षित है. शायद उनकी इसी सोच का परिणाम था सम्मेलन में गाँधी का लिया जाना. आगे चलकर 'हिन्दुस्तानी' के प्रश्न पर टण्डन जी और महात्मा गाँधी में मतभेद हुआ. गाँधी जी हिन्दुस्तानी के समर्थक थे. उन्होंने गुजरात शिक्षा सम्मेलन, भड़ौच में 20 अक्टूबर 1917 को दिए गए अपने भाषण में कहा है, "ऐसी दलील दी जाती है कि हिन्दी और उर्दू दो अलग अलग भाषाएं हैं. यह दलील सही नहीं है. उत्तर भारत में मुसलमान और हिन्दू दोनो एक ही भाषा बोलते हैं. भेद पढ़े लिखे लोगों ने डाला है. इसका अर्थ यह है कि हिन्दू शिक्षित वर्ग ने हिन्दी को केवल संस्कृमय बना दिया है. इस कारण कितने ही मुसलमान उसे समझ नहीं सकते. लखनऊ के मुसलमान भाइयों ने उर्दू में फारसी भर दी है और उसे हिन्दुओं के समझने के अयोग्य बना दिया है. ये दोनो केवल पंडिताऊ भाषाएं हैं, और उनको जनसाधारण में कोई स्थान प्राप्त नहीं है. (संपूर्ण गाँधी वाँग्मय, खण्ड-14, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 1965, पृष्ठ-20-20)

इस विषय पर लम्बे समय तक टण्डन जी और महात्मा गाँधी के बीच पत्र व्यवहार होता रहा. टंडन जी हिन्दी के समर्थक थे- अपेक्षाकृत संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के. डॉ. भीमराव अम्बेडकर के अनुसार तो काँग्रेस की बैठक में होने वाले मतदान में 78 के मुकाबले 77 वोटों से हिन्दुस्तानी हार गई और वह एक वोट सभाध्यक्ष डॉ राजेन्द्र प्रसाद का था. डॉ. अम्बेडकर ने अपने एक व्याख्यान में कहा हैं, "भारतीय संविधान के प्रारूप पर विचार करते हुए हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में अंगीकृत किए जाने के प्रश्न पर कांग्रेस पार्टी मीटिंग में क्या हुआ, यदि मैं इस बात को अब जनता को बताऊं तो शायद रहस्योद्घाटन का दोष मुझे नहीं दिया जाएगा. इस प्रश्न से संबंधित धारा 15 से अधिक विवादास्पद कोई दूसरी धारा नहीं थी. इससे अधिक विरोध किसी धारा का नहीं हुआ. इससे अधिक गरमागरमी किसी धारा पर नहीं हुई. एक लम्बे विवाद के बाद जब इस प्रश्न पर मतदान हुआ, दोनो पक्ष में 78 मत थे. राष्ट्र भाषा के रूप में हिन्दी को स्थान एक मत से मिला. ये तथ्य मैं अपनी व्यक्तिगत जानकारी के आधार पर सामने रख रहा हूँ. प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में काँग्रेस पार्टी में मेरा स्वाभाविक प्रवेश था."(अम्बेडकर भीमराव, थाट्स ऑन लिंग्विस्टिक स्टेट्स, डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर –राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खण्ड-1, सं. बसंत मून, एजूकेशन डिपार्टमेंट, गवर्नमेंट ऑफ महाराष्ट्र, 1989, पृष्ठ-148) यद्यपि इस बारे में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि कांग्रेस की जिस मीटिंग का उल्लेख डॉ. अम्बेडकर ने किया है वह किस तारीख को और कहाँ हुई थी. जे. आर. कपूर ने तो यहाँ तक लिखा है कि कांग्रेस की इस तरह की किसी मीटिंगं की कोई प्रामाणिक सूचना नहीं मिलती जिसमें हिन्दी और हिन्दुस्तानी को लेकर मतदान हुआ हो. "देयर बीइंग प्रेक्टिकल यूनानिमिटी ऑन द क्वेश्चन ऑफ हिन्दी वीइंग द ऑफिशियल लैंग्वेज ऑप द यूनियन, देयर वाज नेवर एनी ऑकेजन फॉर इट दू बी पुट टू वोट इन एनी कांस्चूयेन्ट असेम्बली कांग्रेस पार्टी मीटिंग."(www.wikipedia.org/hindi and hindustani).

इसके बाद जैसे जैसे आजादी करीब आती गई दो राष्ट्रों के सिद्धांत को बल मिलता गया और साम्प्रदायिकता बाढ़ की तरह उफनती गई. मुस्लिम लीग ने संविधान सभा का बहिष्कार किया. जुलाई 1947 में कांग्रेस ने देश विभाजन को सिद्धांत रूप में स्वीकार कर लिया. ऐसी दशा में हिन्दी और हिन्दुस्तानी के मसले को नए ढंग से देखा जाने लगा. नेताओं ने उर्दू को भी विभाजन को बढ़ावा देने वाली भाषा के रूप में देखा और इस तरह हिन्दी और उर्दू को हिन्दू और मुस्लिम से जोड़कर देखने वालो की संख्या बढ़ती गई. अंतत : गाँधी जी के समन्वय और धर्मनिरपेक्षतावादी दृष्टिकोण के पक्ष में आवाजें मंद पड़ती गईं और 17 जुलाई 1947 को संविधान सभा के बाहर कांग्रेस की मीटिंग में हिन्दी और हिन्दुस्तानी को लेकर मतदान हुआ जिसमें 32 के मुकाबले 63 वोटों से हिन्दी की जीत हुई. एक दूसरे मतदान में देवनागरी के पक्ष में 63 और विरोध मे 18 मत पड़े. जाहिर है सन् 1949 में 11 से 14 सितंबर

तक चलने वाली बैठक में देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी को संघ की राजभाषा घोषित किया गया. भाषा संबंधी इस मुद्दे को ऐतिहासिक परिणति तक पहुँचाने में राजर्षि टण्डन की भूमिका अन्यतम थी.

टंडन जी को गाँधी जी ने 25.05.1945 को लिखे अपने पत्र में कहा है, "मेरे पास उर्दू में खत आते हैं, हिन्दी में आते हैं और गुजराती में. सब पूछते हैं कि, मैं कैसे हिन्दी साहित्य सम्मेलन में रह सकता हूँ और हिन्दुस्तानी भाषा में भी ? वे कहते हैं, सम्म्लन की दृष्टि में हिन्दी ही राष्ट्रभाषा हो सकती है. जिसमें नागरी लिपि को ही राष्ट्रीय स्थान दिया जाता है. जब मैं सम्मेलन की भाषा और नागरी लिपि को पूरा राष्ट्रीय स्थान नहीं देता हूँ तब मुझे सम्मेलन में से हट जाना चाहिए.. ऐसी दलील मुझे योग्य लगती है. इस हालत में क्या सम्मेलन से हटना मेरा फर्ज नहीं होता है ? ऐसा करने से लोगों को दुविधा न रहेगी और मुझे पता चलेगा कि मैं कहाँ हूँ. "जवाब में टण्डन जी ने 8.05.1945 को गाँधी जी को लिखा, "पूज्य बापूजी, आप का 25 मई का पत्र मुझे मिला. आप को स्वयं हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सदस्य रहते हुए लगभग 27 वर्ष हो गए. इस बीच आपने हिन्दी प्रचार का काम राष्ट्रीयता की दृष्टि से किया. वह सब काम गलत था, ऐसा तो आप नहीं मानते होंगे. राष्ट्रीय दृष्टि से हिन्दी का प्रचार वांछनीय है, यह तो आप का सिद्धांत है ही. आप के नए दृष्टिकोण के अनुसार उर्दू-शिक्षण का भी प्रचार होना चाहिए. यह पहले काम से भिन्न एक नया काम है, जिसका पिछले काम से कोई विरोध नहीं है.

सम्मेलन हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानता है. उर्दू को वह हिन्दी की एक शैली मानता है, जो विशिष्टजनों में प्रचलित है. स्वयं वह हिन्दी की साधारण शैली में काम करता है, उर्दू शैली का नहीं. आप हिन्दी के साथ उर्दू को भी चलाते हैं. सम्मेलन उसका तनिक भी विरोध नही करता. किन्तु, राष्ट्रीय कामों में अंग्रेजी को हटाने में वह उसकी सहायता का स्वागत करता है. भेद केवल इतना ही है कि आप दोनो चलाना चाहते हैं. सम्मेलन आरंभ से केवल हिन्दी चलाता आया है. हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सदस्यों को हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के सदस्य होने से रोक नहीं है. हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से निर्वाचित प्रतिनिधि हिन्दुस्तानी एकैडमी के सदस्य हैं और हिन्दुस्तानी एकैडमी हिन्दी और उर्दू दोनो शैलियाँ और लिपियाँ चलाती है. इस दृष्टि से मेरा निवेदन है कि मुझे इस बात का कोई अवसर नहीं लगता कि आप सम्मेलन छोड़ें. ….. मुझे जो बात उचित लगी, ऊपर निवेदन किया किन्तु यदि आप मेरे दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं और आप की आत्मा यही कहती है कि सम्मेलन से अलग हो जाऊं तो आप के अलग होने की बात पर बहुत खेद होते हुए भी नतमस्तक हो आप के निर्णय को स्वीकार करूंगा." विनीत, पुरुषोत्तमदास टण्डन (उद्धृत, हिन्दी राष्ट्रभाषा से राजभाषा तक, विमलेश कान्ति वर्मा, पृष्ठ-43)

गाँधी जी ने टण्डन जी के उक्त पत्र का विस्तार से जवाब अपने 13.06.1945 को लिखे पत्र में दिया इसके बाद फिर टंडन जी ने लगभग पाँच पृष्ठ का पत्र गाँधी जी को लिखा. इस तरह लम्बे पत्राचार के बाद अन्तत : सेवाग्राम से 25 जुलाई 1945 को गाँधी जी को लिखना पड़ा, "आप का ता. 11.7.45 का पत्र मिला. मैने दो बार पढ़ा. बाद में भाई किशोरीलाल को दिया. वे स्वतंत्र विचारक हैं, आप जानते होंगे. उन्होंने जो लिखा है सो भी भेजता हूँ. मैं तो इतना ही कहूंगा, जहां तक हो सका मैं आप के प्रेम के अधीन रहा हूँ. अब समय गया है कि वही प्रेम मुझे आप से वियोग कराएगा. मैं अपनी बात नहीं समझा सका हूँ. यही पत्र आप सम्मेलन की स्थाई समिति के पास रखें. मेरा ख्याल है कि सम्मेलन ने मेरी हिन्दी की व्याख्या अपनायी नहीं है. अब तो मेरे विचार इसी दिशा में आगे बढ़े हैं. राष्ट्रभाषा की मेरी व्याख्या

में हिन्दी और उर्दू लिपि और दोनो शैलियों का ज्ञान आता है. ऐसा होने से ही दोनो का समन्वय होने का है तो हो जाएगा. मुझे डर है कि मेरी यह बात सम्मेलन को चुभेगी. इसलिए मेरा स्तीफा कबूल किया जाय. हिन्दुस्तानी प्रचार सभा का कठिन काम करते हुए मैं हिन्दी की सेवा करूँगा और उर्दू की भी. "(उद्धृत, उपर्युक्त, पृष्ठ- 50) और इस तरह हिन्दुस्तानी और हिन्दी के विवाद में महात्मा गाँधी का दशकों पुराना संबंध हिन्दी साहित्य सम्मेलन से टूट गया.

हिन्दी के स्वरूप को लेकर उन दिनों काँग्रेस के भीतर ही दो गुट हो गए- एक गाँधीजी की हिन्दुस्तानी का पक्षधर और दूसरा टण्डन जी की हिन्दी का. राजर्षि टण्डन के संघर्ष का ही परिणाम था कि गाँधी, नेहरू, मौलाना अबुलकलाम आजाद आदि द्वारा हिन्दुस्तानी के समर्थन के बावजूद काँग्रेस की बैठक में होने वाले मतदान में 78 के मुकाबले 77 वोटों से हिन्दुस्तानी हार गई. इसके बाद जैसे जैसे आजादी करीब आती गई, दो राष्ट्रों के सिद्धांत को बल मिलता गया और साम्प्रदायिकता बढ़ती गई. स्वाभाविक था हिन्दी और उर्दू को हिन्दू और मुस्लिम से जोड़कर देखने वालों की संख्या बढ़ती गई और अंतत : गाँधी जी के समन्वय और धर्मनिरपेक्षतावादी दृष्टिकोण के पक्ष में आवाजें मंद पड़ती गईं. इस बीच देश विभाजित हो चुका था और पाकिस्तान उर्दू को अपनी राष्ट्रभाषा घोषित कर चुका था. जाहिर है सन् 1949 में 11 से 14 सितंबर तक लगातार चलने वाली बहस के बाद संविधान सभा ने देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी को संघ की राजभाषा घोषित किया.

प्रसिद्ध साहित्यकार लक्ष्मीनारायण सुधांशु हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रति राजर्षि टण्डन के योगदान का उल्लेख करते हुए लिखते हैं- "उन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य क्षेत्र में कोइ सर्जनात्मक कृति नहीं दी है, कुछ तुकबन्दियों तथा लेखों के अतिरिक्त उन्होंने और कुछ नहीं लिखा. लेकिन उनकी वास्तविक कृति है अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का संगठन. इसके द्वारा उन्होंने हिन्दी साहित्य की परीक्षाओं का जो संचालन किया, उससे साधारण जनता में हिन्दी साहित्य के प्रति अभिरुचि, साहित्य की जानकारी और लोक साहित्य में जागृति की भूमिका बनी. सम्मेलन की परीक्षाओं का जाल सम्पूर्ण भारत में बिछ गया. सन् 1910-1950 के मध्य राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी के प्रचार-प्रसार का श्रेय टण्डन जी को है. इसीलिए लोग उन्हें राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्राण कहा करते थे."

सन् 1949 में जब संविधान सभा में राजभाषा सम्बंधी प्रश्न उठाया गया तो उस समय एक विचित्र स्थिति थी. पं० नेहरू, अबुलकलाम आजाद जैसे अनेक नेता हिन्दुस्तानी के पक्षधर थे. वहाँ गाँधीजी का बार -बार हवाला दिया गया. मो. इस्माइल ने गाँधी जी के एक लेख का हिस्सा उद्धृत किया, " भारत के करोड़ो ग्रामीणों को पुस्तकों से कोई मतलब नहीं है. वे हिन्दुस्तानी बोलते हैं जिसे मुस्लिम उर्दू में लिखते हैं तथा हिन्दू उर्दू लिपि या नागरी लिपि में लिखते हैं. अतएव मेरे और आप जैसे लोगों का कर्तव्य है कि दोनो लिपियों को सीखें." (संविधान सभा में 14 सितंबर को दिए गए भाषण से) परन्तु टण्डन जी झुके नहीं. 11,12,13,14 दिसम्बर 1949 को गरमागरम बहस के बाद हिन्दी और हिन्दुस्तानी को लेकर सदन में मतदान हुआ और अन्तत : देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी संघ की राजभाषा घोषित हुई.

'हिन्दी राष्ट्रभाषा क्यों', 'मातृभाषा की महत्ता', 'भाषा का सवाल', 'गौरवशाली हिन्दी', 'हिन्दी की शक्ति', 'कवि और दार्शनिक' आदि विषयों पर टण्डन जी के निबंध प्रकाशित हैं.

पुरुषोत्तमदास टण्डन के बहु आयामी और प्रतिभाशाली व्यक्तित्व को देखकर उन्हें 'राजर्षि' की उपाधि से विभूषित किया गया. 15 अप्रैल सन् 1948 की संध्यावेला में सरयू तट पर वैदिक मंत्रोच्चार के साथ संत देवरहा बाबा ने उन्हें 'राजर्षि' की उपाधि से अलंकृत किया. भारत सरकार ने उन्हें देश का सर्वोत्तम सम्मान 'भारत रत्न' से विभूषित किया. आज उनके जन्मदिन पर हम हिन्दी के लिए किए गए उनके महान योगदान का स्मरण करते हैं और उन्हें श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं.

वैश्विक हिंदी सम्मेलन, मुंबई
vaishwikhindisammelan@gmail.com